मुक्ति (मोक्ष)

मुक्ति बंधन की विपरीत स्थिति है। यहाँ मुक्ति से तात्पर्य है - जीव से दुःखों की समाप्ति तथा जन्म-मरण चक्र का अवरुद्ध होना। जब जीव का कर्म पुद्गलों के साथ संयोग होता है तो बंधन एवं जब जीव का इन कर्म पुद्गलों से सर्वथा अलगाव होता है तो वह मोक्ष की स्थिति को प्राप्त करता है।

मोक्ष जीवन का चरम आध्यात्मिक लक्ष्य है। मोक्ष प्राप्ति के बाद जीव के दुःखों का अंत हो जाता है तथा उसे भव-चक्र से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। मोक्ष की यह प्रक्रिया दो स्तरों पर सम्पन्न होती है - संवर और निर्जरा।

कर्म पुद्गलों का जीव की ओर होने वाले प्रवाह को रोकना 'संवर' कहलाता है जबकि जो कर्म पुद्गल जीव में पहले से ही प्रवेश कर चुके हैं उनका पूर्ण रूप से वहाँ से उन्मूलन कर देना ही 'निर्जरा' कहलाता है। पुनः संवर एवं निर्जरा के भी दो-दो भेद बताए गए हैं -

भाव संवर - वैचारिक स्तर पर कर्म पुद्गलों के प्रवाह को रोकना।
द्रव्य संवर - वास्तविक प्रवाह को रोकना।
भाव निर्जरा - वैचारिक स्तर पर कर्म पुद्गलों से जीव का पृथकीकरण भाव निर्जरा है।
द्रव्य निर्जरा - वास्तविक रूप से कर्म पुद्गलों का जीव से पृथकीकरण द्रव्य निर्जरा है। यह द्रव्य निर्जरा ही मोक्ष है।

मोक्ष की स्थिति में जीव अपनी स्वाभाविक स्थिति अर्थात् अनंत चतुष्टय (ज्ञान, दर्शन, वीर्य, आनंद) से युक्त हो जाता है। इसे हम चार्ट द्वारा इस प्रकार से समझ सकते हैं -

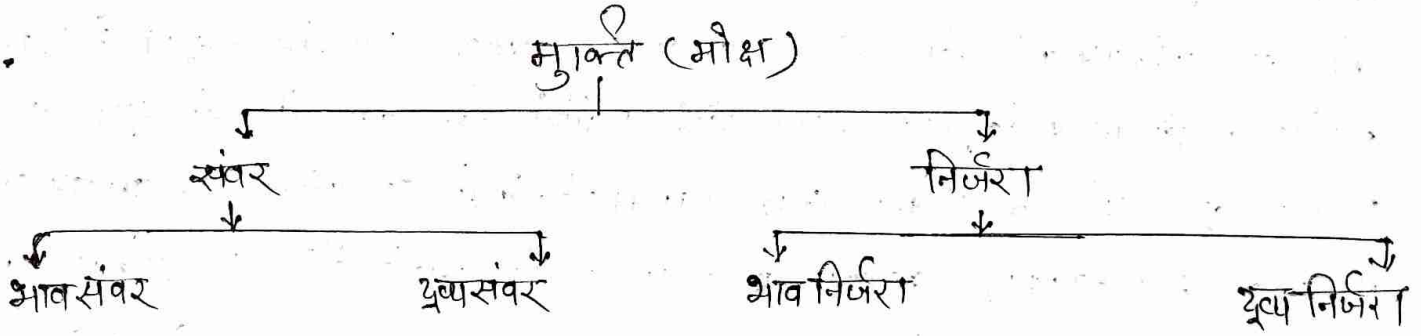

मुक्ति के साधन → आचार्य गृद्धपिच्छरचित 'तत्वार्थसूत्र' के प्रथम सूत्र में ही मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का उल्लेख करते हुए कहा है कि - "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः"। अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र ही मोक्ष प्राप्ति के साधन हैं। यहाँ सम्यक् से तात्पर्य है उचित या सही।

(1) सम्यक् दर्शन → यथार्थ ज्ञान के प्रति श्रद्धा का भाव होना। अर्थात् जैन धर्म के उपदेष्टाओं के प्रति श्रद्धा एवं उनके वचनों की सत्यता पर विश्वास एवं श्रद्धा भाव रखना। यह त्रिरत्नों में प्रथम स्थान रखता है क्योंकि अभाव में ज्ञान एवं चरित्र संभव नहीं है। जैन विचारक कहते हैं कि - "जिस प्रकार नींव प्रासाद (भवन) का मूलाधार है और सुयश सुन्दरता पर, जीव सुख-भोग पर, राजशक्ति विजय पर, संस्कृति श्रेष्ठता पर और शासन राजनीति पर आधारित है, उसी प्रकार यह (सम्यक् दर्शन) मोक्ष का प्राथमिक कारण है"।

(2) सम्यक् ज्ञान → तीर्थंकरों के उपदेशों एवं आगम ग्रंथों का सही ज्ञान। बंधन के नाश के लिए सम्यक् ज्ञान अत्यंत आवश्यक है। यह जीव-अजीव तत्व की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान है। इस ज्ञान के अभाव में क्रोध, लोभ आदि कषायों के नाश हेतु जीवों को प्रेरित किया जाता है।

(3) सम्यक् चरित्र → हितकारी एवं सद्कर्मों का आचरण। अर्थात् ऐसे कार्यों से विरत होना जो मोक्ष प्राप्ति में बाधक हैं तथा ऐसे कार्यों की ओर प्रवृत्त होना जो मोक्ष प्राप्ति में सहायक है। 'द्रव्यसंग्रह' ग्रंथ में सम्यक् चरित्र को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि - 'अहित कार्यों का वर्जन एवं हित कार्यों का आचरण ही सम्यक् चरित्र है'। इस आचरण हेतु जैन दर्शन में 'पंचमहाव्रत' की बात की गई है।

पंचमहाव्रत → जैन दर्शन में इन पाँच व्रतों का विशिष्ट स्थान है, जिनके पालन के बिना जीव कदापि मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता है, क्योंकि इनका आचरण पूर्वक संपादन आवश्यक होता है। ये व्रत हैं - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

(i) अहिंसा (Non-Violence) → यह जैन-धर्म का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं आधारभूत नैतिक गुण है। अहिंसा का अर्थ है - अवध। अर्थात् मन, वचन एवं कर्म से किसी भी जीव की हिंसा न करना अहिंसा है। प्रत्येक जीव चूंकि इस संसार में उच्चतम चेतना की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील है, अत: हमें किसी भी प्रकार से कहीं भी किसी भी प्राणी की हिंसा या हत्या करने का कोई अधिकार नहीं है।

(ii)- सत्य (Truth) → असत्य का परित्याग। असत्य भाषण एवं वचन का परित्याग एवं सत्य एवं मधुर वाणी का प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए मनुष्य को लोभ, मोह, डर और क्रोध आदि से दूर रहना चाहिए। उसे सत्यव्रती होना चाहिए। जैन दर्शन में पाँच (5) अतिचारों के माध्यम से सत्यव्रती को सावधान किया गया है।—

(1). किसी की निंदा करना
(2). किसी की गुप्त बात का प्रकाशन करना।
(3). किसी के विश्वास को तोड़ना।
(4). किसी को मिथ्या उपदेश देना।
(5). झूठी गवाही देना।

इस प्रकार से जैन दर्शन मे असत्य बंधनकारी है तथा सत्य मुक्ति का मार्ग। 'नियमसार' में आचार्य कुंदकुंदाचार्य ने सत्य को परिभाषित करते हुए कहा है—

" रागेण वा द्वेषेण वा मोहेन वा मृषाभाषा परिणामं।
य: प्रजहाति साधु: सदा द्वितीय व्रतं भवति तस्यै ॥" – 57

अर्थात् राग, द्वेष, मोह के कारण किये जाने वाले, असत्य भाषण को जो छोड़ता है, वही इस सत्य का व्रती है या दूसरे व्रत का व्रती है।

(iii)- अस्तेय (Non-Stealing) → चोरी नहीं करना। अर्थात् किसी दूसरे की सम्पत्ति को बिना उसकी आज्ञा या इच्छा के ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा करना। चूँकि 'स्तेय' का अर्थ होता है - चोरी। अत: अस्तेय शब्द का अर्थ हुआ चोरी न करना। स्तेय कर्म को हिंसक माना गया है। इसे कर्म, मन आदि से भी नहीं करना चाहिए। आचार्य कुंदकुंद कहते हैं कि—

" ग्रामे वा नगरे वाऽरण्ये वा प्रेक्षयित्वा परमर्थम् ।
यो मुंचति ग्रहणं भावं तृतीय व्रतं भवित तस्यैव ।।" –(नियमसार, 58)

अर्थात् जो पुरुष ग्राम में, नगर में या वन में पराई वस्तु को देखकर उसे ग्रहण करने के भाव का त्याग करता है, वही वास्तव में इस तीसरे व्रत का व्रती होता है।

(4). ब्रह्मचर्य (Celebacy) → पारिवारिक जीवन संयमित रूप से व्यतीत करना ब्रह्मचर्य से तात्पर्य है - समस्त वासनाओं का परित्याग करना। इसके पालन से समस्त इन्द्रियाँ नियंत्रण में रहती हैं, जिससे जीव आसक्ति, मोह आदि कुप्रवृत्तियों से बचता है।

(5). अपरिग्रह (Renunciation) → सांसारिक सुख-सुविधाओं का संग्रह न करना। परिग्रह का अर्थ है - धनादि का संग्रह करना। अतः अपरिग्रह का अर्थ है - धनादि का संग्रह न करना। परिग्रह के कारण व्यक्ति मोह-माया से ग्रस्त हो बंधन में बंधता है। इसी बाबत 'नियमसार' के टीकाकार मुनिराज एक श्लोक में कहते हैं कि - 'हे भव्य जीव ! भव, भीरुता, परिग्रह विस्तार को छोड़ो और निरुपम सुख के आवास की प्राप्ति हेतु निज आत्मा में अविचल, सुखाकार तथा सांसारिक लोगों को दुर्लभ, ऐसी गति करो।'

इस प्रकार से इन पंचमहाव्रतों के अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति साधन में दस (10) धर्मों का भी उल्लेख किया गया है। ये दस धर्म हैं –

दस धर्म - (1) क्षमा, (2) मार्दव (कोमलता), (3) आर्जव (सरलता), (4) सत्य, (5) शौच (शरीर और आत्मा की शुद्धि), (6) संयम (शरीर एवं मन पर नियंत्रण), (7) तप, (8) त्याग, (9) आकिंचन (किसी भी पदार्थ में ममत्व न रखना), (10) ब्रह्मचर्य पालन।

इनके अतिरिक्त नैतिक कर्म एवं आचरण जैसे कि पुण्य कर्म तथा भूखे को भोजन देना, प्यासे को पानी, गरीब को वस्त्र, साधुओं का आदर और सम्मान, आराम आदि देना भी धर्म बताये गये हैं।

उपसंहार → इस तरह से हम देखते हैं कि जैन धर्म में त्रिरत्न (सम्यक ज्ञान, दर्शन, चारित्र), पंच महाव्रत, दस धर्मादि के पालन से जीव के बंधन का नाश हो जाता है। उसके समस्त दुःख समाप्त हो जाते हैं तथा उसे पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ता। इस तरह जीव (मोक्ष) 'कैवल्य' की प्राप्ति करता है।

मोक्ष की अवस्था → जैन दर्शन के अनुसार आत्मा स्वभावतः चार पूर्णताओं से युक्त होती है - अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंत वीर्य (शक्ति), अनंत आनन्द एवं शांति। किंतु स्वयं के कर्मों के कारण यह पूर्णताएँ दब जाती हैं। मोक्ष की अवस्था में आत्मा अपनी पूर्णताओं को पुनः प्राप्त कर लेती है। इस तरह से समस्त दुःखों से विनिर्मुक्त होकर वह अनंत सुख एवं शांति की प्राप्ति करती है। इस अवस्था में उसका शरीर से वियोग होता है, किंतु सत्ता से वियोग नहीं होता। अर्थात् उसकी सत्ता बनी रहती है। वह इस संसार से ऊपर उठकर सिद्धशील में अनन्त काल तक निवास करती है।

इस प्रकार से जैन दर्शन मोक्ष के दोनों पहलुओं अर्थात् भावात्मक पहलू एवं निषेधात्मक पहलू में विश्वास रखता है। निषेधात्मक रूप से मोक्ष दुःखरहित अवस्था है और भावात्मक रूप से यह अनन्तचतुष्टय की प्राप्ति की अवस्था है।

महत्व → जैन दर्शन ईश्वर आदि की सहायता के बिना भी मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। इस रूप में यह मनुष्य को स्वावलंबी बनने की प्रेरणा देता है।

जैनियों का यह कहना है कि विचार का प्रभाव जीव पर पड़ता है, यह मनोवैज्ञानिक रूप से सत्य है।

वर्तमान समय में पंच-महाव्रत की प्रासंगिकता है। वैश्विक स्तर पर बढ़ते आतंकवाद, हिंसा एवं वैमनस्य इत्यादि को नियंत्रित करने में जैनियों का अहिंसा संबंधी विचार महत्वपूर्ण हो सकता है।

पर्यावरणीय (Eco) न्याय की स्थापना में अपरिग्रह की अवधारणा तथा विकृत मूल्यविहीन भोगवादी संस्कार के प्रसार में नियंत्रित करने में ब्रह्मचर्य की अवधारणा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

जैनियों का मोक्ष विचार भारतीय दार्शनिक परम्परा में वर्णित विभिन्न मोक्ष विचारों में उत्कृष्ट विचारों के रूप में सम्मिलित किया गया है। यहाँ मोक्ष की स्थिति में न केवल दुःखों का नाश होता है अपितु चेतना एवं आनंद की भी स्थिति बनी रहती है।